[Vol-1, Issue-2, July-September 2023]

International Journal of Science and Social Science Research [IJSSSR] ISSN: 2583-7877

मालवीय जी का शैक्षिक विचार और उसकी वर्तमान प्रासंगिकता

डॉ० अतुल कुमार श्रीवास्तव

असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, राजा श्रीकृष्ण दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

Author Email: dr.atulsrivastava.07@gmail.com

सारांश—इस लेख में संत एकलव्य जी के जीवन, विचारों और शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण का वर्णन किया गया है। उनके अनुसार, शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को समस्त प्रकार की परतंत्रताओं से मुक्त कर आत्मबल से युक्त करना है। उन्होंने शिक्षा को 'मुक्ति का साधन' माना और इसी दृष्टिकोण से शिक्षा संस्थानों की स्थापना की, जिनका केंद्रबिंदु स्वतंत्रता रहा।

वे शिक्षा को केवल जानकारी नहीं, बल्कि जीवन के संपूर्ण विकास का माध्यम मानते थे। उनका विश्वास था कि शिक्षा से मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक बल की प्राप्ति होनी चाहिए। उन्होंने विद्यार्थियों को न केवल ज्ञान बल्कि राष्ट्र–निर्माण की भावना और सामाजिक जिम्मेदारी से भी जोड़ा।

महिला शिक्षा को उन्होंने विशेष महत्व दिया और माना कि जब तक स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होंगी, तब तक सामाजिक सुधार संभव नहीं है। उन्होंने जोर देकर कहा कि स्त्रियों को भी आत्मनिर्भर और सशक्त बनाने हेतु उच्चस्तरीय शिक्षा देना आवश्यक है।

विज्ञान और आध्यात्मिकता के संतुलन को भी उन्होंने शिक्षा में जरूरी माना। उनका मानना था कि आधुनिक विज्ञान के साथ भारतीय परंपरा, संस्कृति और दर्शन का समन्वय ही भारत को उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जा सकता है।

एकलव्य जी के विचार आज भी प्रेरणा देते हैं कि शिक्षा केवल रोजगार का साधन नहीं, बल्कि व्यक्ति के पूर्ण विकास और समाज की उन्नति का आधार है।

शब्दकुंजीः संत एकलव्य, स्वतंत्रता और शिक्षा, महिला शिक्षा, राष्ट्रीय चेतना, आध्यात्मिक शिक्षा, फोर्ड फाउंडेशन, आधुनिक विज्ञान

I. प्रस्तावना

महामना मालवीय जी अथर्ववेद के पृथिवी–सूक्त के मन्त्र 'सत्यं वहद्व्रतमुप्रं दीक्षा तपो महायज्ञः पृथ्वी धारयन्ति' के अनुप्राणित थे। इन वेदविदित चिरन्तन साधनों द्वारा ही वे राष्ट्र का कार्य करना चाहते थे। राजनीति उनके लिए व्यवसाय नहीं थी। वे धर्म, समाज, संस्कृति और शिक्षा को जीवन का आधार मानते थे। वे समझते थे कि उसके उत्थान के बिना राष्ट्र का उत्थान असम्भव एवं अर्थहीन है और इन सभी की सिद्धि का साधन वे शिक्षा मानते थे। भारतीय शिक्षा के माध्यम के प्रश्न और लार्ड मैकाले ने कहा था कि, 'अंग्रेजी माध्यम वह शास्त्र है जो अंग्रेजों के राजनीतिक साम्राज्य के नष्ट हो जाने पर भी भारत के ऊपर उनके बौद्धिक और सांस्कृतिक साम्राज्य की रक्षा करता रहेगा' परन्तु भारत ने मैकाले की इस भविष्यवाणी को पूर्णतः चरितार्थ न होने दिया और समय–समय पर यहाँ सुधारवादी आन्दोलन चलते रहे। ये राष्ट्रवादी आन्दोलन भारत को केवल राजनीतिक दासता से ही मुक्त नहीं कराना चाहते थे, वरन् वे भारत को बौद्धिक एवं सांस्कृतिक दासता से भी मुक्त देखना चाहते थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में जो महापुरुष इस दृष्टि से सम्मिलित हुए, उनमें मालवीय जी अग्रणी रहे। भारत की कई प्रबुद्ध आत्माओं ने भारतीय जीवन दर्शन का प्रचार आरम्भ किया। विवेकानन्द, रवीन्द्र, अरविन्द, तिलक आदि ने भारतीय आत्मा के जागरण में महत्वपूर्ण भाग लिया। थियासॉफी द्वारा संचालित भारतीय ब्रह्मविद्या, तत्त्व–सभा, काशी में सेन्ट्रल हिन्दू कालेज आदि भारतीय राष्ट्रीयता के ही उन्नायक थे। इसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन के सन्दर्भ में महामना की कल्पना में एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की उद्भावना हुई। यही राष्ट्रीय विश्वविद्यालय बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित हुआ। 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की योजना केवल एक नयी विद्या संस्था की स्थापनामात्र नहीं थी, यह बौद्धिक और सांस्कृतिक मुक्ति का राज्यव्यापी आन्दोलन था।'[1]

II. शिक्षा सम्बन्धी विचार

महामना के जीवन की आधारभूमि सनातन धर्म थी और उनके ज्ञान के स्रोत थे– वेद, पुराण तथा उपनिषद्। अतः उन्होंने शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण इस दृष्टिकोण से किया। महात्मा गाँधी की भांति मालवीय जी भी शिक्षा के एक उद्देश्य में नहीं, वरन् कई उद्देश्यों में विश्वास करते थे।

मालवीय जी मुख्यतः शिक्षा का एक ही उद्देश्य मानते थे, जिसकी प्राप्ति में अन्य सभी उद्देश्य सह–साधन मात्र ही सिद्ध होते हैं। यह उद्देश्य था, शिक्षा को मुक्ति का साधन बनाना।

'सा विद्या या विमुक्तये'। विद्या वह है जो मुक्ति के लिए हो और मुक्ति वह है जो मानव को सभी प्रकार के बन्धनों–आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक से छुटकारा दिलावे। विद्या मुक्ति का माध्यम है। अतः इस विद्या की पद्धति भी स्वतन्त्र होनी चाहिए क्योंकि मुक्ति ही दूसरों को मुक्त कर सकती है।

'मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्' इसी आदर्श को ध्यान में रखकर महामना ने आरम्भ से ही विश्वविद्यालय में स्वतन्त्र वातावरण का निर्माण किया। विश्वविद्यालय के वातावरण में रहने वालों के चेहरे पर उन्मुक्तता दिखायी पड़ती थी। जब–जब देश की मुक्ति का आन्दोलन चला, विश्वविद्यालय के सभी द्वारा उन्मुक्त हो जाते थे। विश्वविद्यालय के अध्यापकों और छात्रों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में बराबर भाग लिया। इसके लिए वे कभी दण्डित अथवा निष्कासित नहीं हुए। महामना प्रायः ऐसे अवसरों पर कहा करते थे कि विश्वविद्यालय और राष्ट्र का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। देश और राष्ट्र की मुक्ति के लिए एक नहीं अनेक विश्वविद्यालयों का बलिदान किया जा सकता है। अतः विश्वविद्यालय, सर्वतोभावेन स्वतन्त्रता के माध्यम से, स्वतन्त्रता के लिए स्थापित था।

मालवीय जी कुछ ऐसे उद्देश्यों पर बल देते थे, जो शिक्षा को मुक्ति–दायिनी बनाने में सहायक हो सके। इन उद्देश्यों की प्राप्ति आवश्यक थी क्योंकि इनके बिना शिक्षा का प्रमुख आदर्श एक कल्पना मात्र रह जायेगा।

मालवीय जी संस्कृत की इस उक्ति 'शिक्षा विहीनः पशु' के समर्थक थे। वे मानते थे कि अशिक्षित व्यक्ति अन्धकार में निवास करता है। उसे प्रकाश में लाने के लिए विद्या का प्रचार आवश्यक है। जब तक भारतीय जनता को विद्या का प्रकाश नहीं दिया जाता, उसमें उस चेतना का सर्वथा अभाव रहेगा जो उसे सुविकसित मानव बना सके। 'हमारी शिक्षा' नामक लेख में उन्होंने लिखा है कि, 'क्या हम लोग, जो स्वतन्त्रता के पक्षपाती हैं और स्वराज्य पाने की इच्छा रखते हैं, थोड़ा–सा स्वार्थ त्याग करके देश में विद्या का प्रचार करने का साहस नहीं कर सकते। अगर ग्राम–ग्राम में नहीं..... तो हर एक जिले में चार–पांच जातीय पाठशालाएँ स्थापित करके वे अध्यापक, जिनको शहर के प्रकाश के सिवाय उस अन्धकार में जाने का कभी अवसर ही नहीं प्राप्त हुआ है, वहाँ जाकर विद्या–रूपी सूर्य से स्वराज्य का प्रकाश फैलायें। व्यर्थ की निन्दा अथवा बकवास से न तो किसी देश का कल्याण हुआ है, न हो सकता है।'[2]

महामना उत्तम चरित्र के समर्थक ही नहीं, वरन् स्वतः उसके ज्वलन्त प्रमाण थे। शिक्षा से यदि उदात्त व्यक्तित्व न बना, अनुकरणीय शुभ चरित्र न निर्मित हुआ तो वह शिक्षा ही अधूरी है। वह चाहते थे कि विश्वविद्यालय का प्रत्येक छात्र नियमतः सन्ध्या और गायत्री का पाठ करे, गंगा स्नान तथा विश्वनाथ दर्शन करें। इस दृष्टि से उन्होंने विश्वविद्यालय के प्रांगण में विश्वनाथ जी के मन्दिर की स्थापना करायी। चरित्र के निर्माण के लिए धर्म–निष्ठा आवश्यक है। विश्वविद्यालय के पाठ्य–विषयों में हिन्दू–संस्कृति तथा संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य रखा गया। हिन्दू संस्कृति के माध्यम से मनीषियों एवं महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़ायी जाती थी, जिनकी छाप छात्र–जीवन पर पड़ती थी। चरित्र–निर्माण के लिए दूसरी आवश्यक वस्तु संयम है। जब तक प्राणी अपनी इच्छाओं तथा आवश्यकताओं पर विजय नहीं पाता, उन पर संयम नहीं रखता, तब तक चरित्र का विकास नहीं हो पाता। स्वयं मालवीय जी के विषय में राजर्षि टण्डन ने कहा कि– 'तप और आत्म निग्रह की वह मूर्ति थे।' उत्तम चरित्र के विषय में मालवीय जी ने केवल उपदेश ही नहीं दिया, वरन् आजीवन उत्तम चरित्र के आदर्श बने

रहे। उनके दर्शन मात्र से ही मन में पुनीत भावनाओं का संचार होता था। जीवन की मलिनताएँ एक–एक करके छँटने लगती थी। मालवीय जी के वेश एवं शरीर का सुन्दर वर्णन आचार्य पं0 सीताराम चतुर्वेदी ने किया है–

"महात्मा मालवीय का ब्रह्मवर्चस्वयुक्त, तेजोमय, चन्दन चर्चित ललाट, गौर प्रदीप्त वर्ण, शुभ्र सुव्यवस्थित उक्ष्णीय, गले में एक फेरा देकर लिपटा हुआ, जाह्न तक दोनों ओर लटका हुआ उत्तीय, श्वेत निर्मल अंगा किसी भी व्यक्ति को सहसा प्रथम दर्शन में आकृष्ट करने के लिए पर्याप्त वैभव था किन्तु इन सबसे अधिक आकर्षक थी, उनकी दैवी वाणी, जो सबकी सहमा स्तब्ध और अभिभूत कर देने के लिए पर्याप्त थी।"[3]

ग्राम–ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे–ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला, मल्ल शाला, प्रति पर्व महोत्सवः।।
अनाथाः विधवाः रक्ष्याः मन्दिराणिं तथा च गौः।
धर्म्य संघटनं कृत्वा, देयं दानं च तद्धितम्।।

मालवीय जी रचित इस श्लोक में हम देखते हैं कि उनकी योजनाओं में मल्ल शाला का भी एक स्थान है। जीवन की समस्त इच्छाएँ, एवं उदात्त आदर्श स्वस्थ शरीर का ही अवलम्बन करते हैं। राष्ट्र का कल्याण स्वस्थ नागरिकों से ही हो सकेगा।

दूध पियो कसरत करो, नित्य जपो हरिनाम।

इसी उद्देश्य से उन्होंने विश्वविद्यालय में मल्ल शाला का भी स्थापन किया। अभ्युदय उनके जीवन का आदर्श था, जिसकी प्राप्ति आलस्ययुक्त तथा तन्द्रिल पुरुषों से सम्भव नहीं थी। उनकी ललकार थी–

उठिए जागिए होइए, आशु कार्य संलग्न।
होगा निश्चय राखिये, सदा सफल शुभ यत्न।

मालवीय जी उच्च स्त्री–शिक्षा के पक्षपाती थे। समाजोत्थान में वे स्त्रियों का विशेष अनुदान मानते थे। उन्होंने अपने 'स्त्री–शिक्षा' नामक लेख में (मार्गशीर्ष शुक्ल 29, सं0 1963) बड़े ही शक्तिशाली शब्दों में अपने विचार व्यक्त किये। उन लोगों का खण्डन किया जो उच्च स्त्री–शिक्षा के विरोधी हैं।

"जिस शिक्षा द्वारा पुरुषों में मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक गुणों का प्रकाश होता है, जिसकी सहायता से उनका जीवन उच्च हो जाता है, उसी शिक्षा को पाकर स्त्रियों के मन और हृदय उन्नत न होकर अधोगति की ओर आकर्षित होंगे– यह कैसी आश्चर्य की बात है। जो शिक्षा पुरुषों को प्रकाश की ओर ले जाती है वही स्त्रियों को अन्धकार की ओर घसीट ले जायेगी– यह कहाँ का विचित्र न्याय है।"[4]

जब तक हम इस (स्त्री) वर्ग को अपने साथ लेकर नहीं चलते, तब तक हम सभी जातीय जीवन की लहलहाती हुई लता को देखकर आनन्दित नहीं हो सकते, क्योंकि मनुष्य समाज का कल्याण अथवा अकल्याण उच्च अथवा नीच होना स्त्रियों के ही हाथ में है।

मालवीय जी उन लोगों से भी सहमत नहीं है जो सामान्य लिखना–पढ़ना, गृहस्थी का आय–व्यय का हिसाब रखना, सन्तान को पालना आदि ही स्त्री–शिक्षा की चरम सीमा मानते हैं। उन्होंने शिक्षा की निम्न परिभाषा दी है–

"हमारा तात्पर्य शिक्षा से हृदय और मन की सारी शक्तियों का सम्यक् रूप से विकास और उनकी पूर्ण पुष्टि से है, अतः स्त्रियों को ईश्वर की दी हुई विपुल शक्ति के जीवन के उच्च आदर्श के सामने लाकर सुगठित करना और कार्यशील बनाना ही हमारा उद्देश्य है और यही हमारे जातीय जीवन का मूल और कर्त्तव्य है।"[5]

मालवीय जी आधुनिक समाज के दोषों का परिष्कार बहुत बड़ी सीमा तक स्त्री–शिक्षा मानते थे। वे सम्राट नेपोलियन की उस उक्ति के अनुमोदक थे कि 'मुझे सुयोग्य माताएँ दो, मैं तुम्हें अच्छा–सा राष्ट्र दूँगा।' उन्होंने स्पष्ट कहा है कि यदि समाज की समस्त स्त्रियाँ शिक्षित हो जायें, तो आज की सामाजिक कुरीतियाँ ढह जायेंगी और हमारो सामाजिक जीवन अपना जीर्ण कलेवर त्यागकर नवीन रूप धारण कर लेगा।

मालवीय जी सह–शिक्षा के विरोधी है। उनकी धारणा है कि जब तक पुरुष तथा नारी अपने नैसर्गिक गुणों को परिवर्तित नहीं कर देते, तब तक सह–शिक्षा का सफल प्रयोग नहीं हो सकता। एक बार किसी प्रश्न के उत्तर में महामना ने कहा था कि, "स्त्रियों में पुरुषोचित और पुरुषों में स्त्रियोचित गुण आरोपित करने के प्रयत्न में हम दोनों को ही उन्नति का मार्ग अवरुद्ध कर रहे हैं।"[6]

पूर्णतः धर्मनिष्ठ होने के कारण महामना स्त्री–शिक्षा के समर्थक होते हुए भी सामाजिक मर्यादा का निर्वाह चाहते थे।

भारतीय परम्परा में ज्ञान दो प्रकार के थे–विद्या और अविद्या। विद्या आध्यात्मिक ज्ञान को कहते थे और अविद्या भौतिक अथवा पार्थिक ज्ञान को कहते थे। दोनों ही प्रकार के ज्ञान मानव–जीवन की पूर्णता और मुक्ति के लिए आवश्यक थे। मालवीय जी इस तथ्य के प्रति जागरूक थे। वे जानते थे कि आध्यात्मिकता और भौतिक ज्ञान का परस्पर विरोध संसार के लिए घातक है। महामना दरिद्रता को देश का अभिशाप समझते थे और समझते थे कि कोरी आध्यात्मिकता की दिशा में उसे बल मिलेगा। अतः आध्यात्मिक ज्ञान के साथ आधुनिक विज्ञान की सहायता से वे देश को समृद्ध बनाना चाहते थे। विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शक्ति के इस दोनों पक्षों को उन्होंने समन्वय प्रदान किया। कोई भी महापुरुष अतीत की दृष्टि में रखकर वर्तमान का विश्लेषण करता है और उनसे प्राप्त तथ्यों से भविष्य का निर्माण की बात सोचता है। महामना ने अपनी प्रखर बुद्धि एवं दूरदर्शी आँखों से भविष्य को देखा। पाश्चात्य देशों की औद्योगिक क्रान्ति ने विश्व की शक्ति को नया मोड़ दिया था। महामना ने समझा कि शिक्षा का विशाल प्रसाद आध्यात्मिकता की दृढ़ शिला पर भले ही खड़ा हो, परन्तु उसका निर्माण विज्ञान के चुने व कार्य से हो सकेगा। अतः मालवीय जी की शिक्षा–योजना में इन दोनों पक्ष को सफल समर्थन मिला।

मालवीय जी ने आजीवन उपदेश तथा व्याख्यान द्वारा जनता को शिक्षा दी किन्तु विद्यालयों में उन्होंने व्याख्यान के अतिरिक्त अभ्यास, प्रयोग और क्रिया–विधि की ओर भी संकेत किया है। पुस्तकीय ज्ञान का भी समर्थन इन्होंने किया, "पढ़ते समय सारी दुनिया को एक ओर रख दो और पुस्तकों में लेखक के विचारों में, डूब जाओ। यही तुम्हारी समाधि है, यही तुम्हारी उपासना और पूजा है।"[7]

इस सम्बन्ध में महामना के एक भाषण से ही एक अवतरण यहाँ प्रस्तुत कर देना अधिक समीचीन होगा– "साहित्य और देश की उन्नति अपने देश की भाषा के ही द्वारा हो सकती है। हाँ, यह सच है कि अंग्रेजी का भण्डार बहुत बड़ा है। उसमें राजनीतिक भाव बहुत अच्छे हैं। आधुनिक विज्ञान का परिचय भी हमको उसी भाषा के द्वारा हुआ है। अब यह लाभ देशव्यापी करना है। यह कार्य देसी भाषा के द्वारा हो सकता है। बिजली की रोशनी से रात्रि का अन्धकार दूर हो सकता है किन्तु सूर्य का प्रकाश नहीं कर सकते। अंग्रेजी के द्वारा जो बात जानी गयी है, उसे अब देशी भाषा के द्वारा सारे देश में फैलाना चाहिए। सार्वजनिक रूप से यह कार्य हिन्दी के द्वारा हो सकता है। अभी तक जो कार्य अंग्रेजी के द्वारा होता आया है, वह अब हिन्दी के द्वारा होना चाहिए।"[8]

III. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

मालवीय जी का भारतीय उच्च–शिक्षा को सवोत्तम योगदान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना है, जिसकी चर्चा हम कुछ विस्तार से नीचे करेंगे।

भागीरथी के तट पर भारती की उपासना का बड़ा, मन्दिर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय महामना पं0 मदनमोहन मालवीय की आकांक्षाओं का मूर्त रूप है। 4 फरवरी, 1916 को बसन्त पंचमी के शुभ दिन विश्वविद्यालय का शिलान्यास तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग के कर–कमलों से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर देश–भर के राजा–महाराजे, नेता, विद्वान तथा धर्म–गुरु उपस्थित हुए।

1911 ई0 में विश्वविद्यालय की जो अन्तिम नियमावली स्वीकृत की गयी, उसके अनुसार विश्वविद्यालय के निम्न उद्देश्य थे–

- हिन्दुओं की सर्वोत्कृष्टता विचारधारा और संस्कृति तथा भारत की प्राचीन सभ्यता की सभी मंगलकारी और महान बातों की रक्षा करने के साधन–स्वरूप हिन्दूशास्त्र और संस्कृत साहितय के अध्ययन को प्रोत्साहन देना।
- ज्ञान–विज्ञान और शास्त्रों की सभी शाखाओं के अध्ययन और तात्त्विक विवेचन को आगे बढ़ाना।
- आवश्यक व्यावहारिक शिक्षा के साथ ऐसी वैज्ञानिक, शिल्पीय और व्यावसायिक विद्याओं को बढ़ाना, जिससे देशी व्यवसायों की अभिवृद्धि हो और राज्य की धन–शक्ति बढ़े।
- 'धर्म और सदाचार' को शिक्षा का आवश्यक अंग बनाकर भारत के युवकों में चरित्र बल भरना।

मालवीय जी जैसे जीवन के अन्य महान् सद्गुणों के समुज्जवल रूप थे, वैसे ही विनय एवं अनुशासन की भी जीती–जागती प्रतिमा थे। विनय का स्रोत है संयम। संयम उनके जीवन का प्रमुख अंग था। साथ ही 'विद्या ददाति विनयम्' मूल–मन्त्र में उनका विश्वास था। विद्वान विनयी होता है, जैसे फलोद्गम से वृक्ष नम्र हो जाते हैं। परन्तु 'छात्राओं में यह विनय, उनमें शिष्यत्व का संचार करने से प्रस्फुटित हो सकता है। छात्रों में विनय और अनुशासन की मालवीय जी की एक विशिष्ट कल्पना थी। विद्यार्थियों में शिष्यत्व का भाव हो अथवा अनुशासन का आधार है। यह अधिकारियों और अध्यापकों की सहानुभूति, वात्सल्य और हित–कामना से उत्पन्न होता है। विनय प्रभावात्मक और अन्तर्निहित होता है। नियन्त्रण शक्ति और प्रहार से यह पैदा नहीं किया जा सकता है।'

विश्वविद्यालय के प्रांगण में महामना की उपस्थिति ही विद्यार्थियों में सुविनय की उत्पादिका थी। उनके दर्शन में अपराधी छात्रों में ग्लानि का आर्विभाव होने लगता था। प्रायश्चित की भावना स्वतः जागने लगी थी। छात्रों के संगठनों को वे प्रोत्साहन देते थे और उनसे आयोजित देश के हित आन्दोलनों को वैध मानते थे।

"मालवीय जी के सामने विश्वद्यिालय, देश और लोक में कोई भेद नहीं था। इसीलिए वे शैक्षणिक एकांगीणता में विश्वास नहीं करते थे। वे समग्र और सन्तुलित जीवन के निर्माता थे।"[9]

अतः कहा जा सकता है कि मालवीय जी के शिक्षा सम्बन्धों में विचार वर्तमान में भी अत्यधिक प्रासंगिक है। उन्होंने धार्मिक एवं सांस्कृतिक शिक्षा को प्रमुखता देते हुए विज्ञान और टेक्नोलॉजी, कृषि, ललित कलाओं, चरित्र निर्माण सम्बन्धी तथा शारीरिक विकास सम्बन्धी शिक्षा का भी अपने विश्वविद्यालय में प्रबन्ध किया। उन्होंने व्याख्यान, प्रयोग, क्रिया, निरीक्षक, स्वाध्याय आदि की ओर भी संकेत किया है। छात्रों में स्वानुशासन, विनम्रता तथा शिष्यत्व की भावना पर विशेष बल दिया है, जो विद्वान तथा सदाचारी गुरु के अनुकरण से ही सम्भव हो सकता है।

सन्दर्भ

1. दूबे, रमाकान्त, विश्व के कुछ महान शिक्षाशास्त्री, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, संस्करण–19997, पृ0 228.
2. वही, पृ0 229.
3. चतुर्वेदी सीताराम – आधुनिक भारत के निर्माता, मदन मोहन मालवीय, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, संस्करण–2014, पृ0 98.

4. वही, पृ0 105.

5. पवार, मदनलाल—मदन मोहन मालवीय : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, संस्करण—2004, पृ0 96.

6. वही, पृ0 126.

7. दुबे, रमाकान्त — विश्व के कुछ महान शिक्षाशास्त्री, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, संस्करण—1997, पृ0 230.

8. वही, पृ0 232.

9. वही, पृ0 234.